नोबेल के बहाने शरीर के सिपाहियों को भरमाने वाले कैंसर पर कुछ ज़रूरी जानकारियाँ

डा. स्कन्द शुक्ल

चिकित्सा में 2018 के नोबल पुरस्कार की घोषणा हो गयी है। इस बार का पुरस्कृत काम कैंसर के उपचार से सम्बन्धित है। कैंसरों के लड़ने वाले सिपाहियों को स्वयं कैंसर भरमा देते हैं। सो दो लोगों ने एक नया काम कर डाला - जिस भटकाव के कारण सिपाही अपनी ड्यूटी ढंग से नहीं निभा पाते थे , उस भटकाव की दवाओं से मरम्मत कर दी। नतीजन कैंसर को शरीर के सिपाही फिर से मारने लगे , जिसके लिए वे बने थे। इसी पर उन दोनो लोगों को पुरस्कार मिला है। इनके नाम हैं जेम्स पी एलिसन और तासुकू हों जो (तस्वीर ऊपर।)

हमारा शरीर एक देश है। उस देश में खरबों नागरिक हैं , जिन्हें कोशिकाएँ कहते हैं। हर कोशिका के पास अपनी नागरिक होने की पहचान है। ये पहचान कुछ खास अणुओं के रूप में है , जो इन कोशिकाओं की सतह पर मौजूद रहते हैं। फिर कुछ कोशिकाएँ गुमराह हो जाती हैं। वे बेतहाशा दूसरों का हक मार कर बढ़ने लगती हैं। ये ही कैंसर की कोशिकाएँ हैं। नतीजन शरीर के सिपाही हरकत में आते हैं। इनका काम इन भटके हुए गुमराह नागरिकों को मारकर देश की सामान्य मुख्यधारा की जनता को बचाना है।

हमारा प्रतिरक्षा-तन्त्र हमारी सेना और पुलिस दोनों है। सेना बनकर यह बाहरी दुश्मनों से लड़ता है, पुलिस बनकर यह भीतर पैदा हो गये दुश्मनों से। हर कोशिका-रूपी नागरिक का आण्विक पहचान-पत्र देखा जाता है। उसी से उसे 'अपना' समझा जाता है। कैंसर-कोशिकाओं की पहचानें सामान्य कोशिकाओं से भिन्न होती हैं। उनके पास पहचान-पत्र अलग होते हैं। उनकी संदिग्ध पहचानें पकड़ ली जाती हैं:फिर उन्हें समाप्त कर दिया जाता है।

लेकिन कैंसर के ये शत्रु कहाँ सीधे-सादे? ये अपनी पहचानें बदल लेते हैं। छिपा लेते हैं। नये अणु उगा लेते हैं। ऐसे कि कोई इनकी असलियत न जान सके। इन्हें अपना ही समझे। और ये बढ़ते जाएँ। और एक दिन देश ही नष्ट हो जाए।

इसलिए देश के ये कैंसर-रूपी भटके हुए नागरिक अपने पास कुछ ऐसे कागजात रखते हैं, जिन्हें देखकर पुलिस गच्चा खा जाती है। ओहो ! तुम्हारे पास अमुक का?? है ! अरे फिर तो तुम अपने हो भाई ! तुम दुश्मन नहीं हो , दोस्त हो ! चलो चेकिंग बन्द ! आगे चलें !

ये गुमराह करने वाले कागजात कई प्रकार के हैं। इनमें से दो नाम जान लीजिए -सीटीएलए 4 और पीडी 1। बस ये समझ लीजिए कि जिन कैंसर-रूपी नागरिकों के पास ये पहचान-पत्र पुलिस को मिले , पुलिस भटकी। वह जान ही न पायी कि ये धोखेबाज हैं। वह समझ न पायी कि वह ठग ली गयी है। कैंसर के खिलाफ कार्यवाही नहीं की। नतीजन बीमारी बढ़ गयी।

फिर दो वैज्ञानिकों ने इस ठगी को बन्द करने की सोची। वे जेम्स पी एलिसन और तासुको होंजो थे। उन्होंने इन ठग्गू पहचानपत्रों के खिलाफ कुछ ऐसे रैपर बनाये कि पुलिसवालों को ये भटका न सकें। नतीजन अब जब अराजक तत्त्वों की पुलिस वालों से मुलाकात हुई , तो पुलिस कन्फ्यूज नहीं हुई। उसने ईमानदारी से कैंसर कोशिकाओं को नष्ट कर डाला। उसने अपनी ड्यूटी सही से निभायी।

इस बार मेडिसिन का नोबल प्राइस इन्हीं रैपरों पर है भाइयो! उन दोनों जनों को मिला है, जिन्होंने शरीर की पुलिस को भटकने से बचाया और कैंसर के खात्मे में मदद दी। कैंसर के इलाज में रेडियोथेरेपी, कीमोथेरेपी , सर्जरी के अलावा यह चौथा विकल्प हमें मिला:प्रतिरक्षा-तन्त्र का भटकाव रोकने के लिए इम्यूनोथेरेपी।

यह लेख मैंने इस तरह लिखा है कि दुनिया का हर आदमी-औरत इसे पढ़कर सीटीएलए 4 , पीडी-पीडी - एल 1 और इनके कारण होने वाले नेगेटिव इम्यून रेग्युलेशन को समझ सके। मैं स्वयं इम्यूनोलॉजिस्ट हूँ, सो इसपर वैज्ञानिक लेख फिर कभी लिखा जा सकता है।

जब कोई यह कहता है कि डॉक्टर साहब , मेरी इम्यूनिटी बढ़ा दीजिए — तो वह नहीं समझ रहा होता कि प्रतिरक्षा-तन्त्र शरीर का वह जटिलतम तन्त्र है, जिसके बारे में ज़्यादातर डॉक्टरों-तक को कोई इल्म नहीं। चिकित्सा के क्षेत्र में मिले 2018 के नोबेल पुरस्कार की बात को मैं अब आगे बढाता हूँ। जिन दो लोगों को यह पुरस्कार मिला है , उन्होंने दो अणुओं पर काम किया है। जेम्स पी.एलिसन और तासुको हों जो का शोध जिन दो अणुओं पर है, वे कैंसर-कोशिकाओं के वे प्रमाण-पत्र हैं, जिनसे वे हमारे शरीर की रक्षक लिम्फोसाइटों के जूझा करते हैं और उन्हें निष्क्रिय कर देते हैं।

आप इसे ऐसे समझिए। कैंसर-कोशिकाएँ मानव-शरीर की ही वे कोशिकाएँ हैं, जिनका अपनी वृद्धि पर कोई नियन्त्रण नहीं है। ये सामान्य कोशिकाओं से आहार और स्थान के लिए प्रतियोगिता करती और उन्हें पिछाड़ देती हैं। अन्ततः यही वह कारण होता है, जिसके कारण मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

ऐसा नहीं है कि हमारा प्रतिरक्षा-तन्त्र इन कोशिकाओं से लड़ता नहीं या उन्हें नष्ट करने की कोशिश नहीं करता। लेकिन अगर पुलिसवाले किसी अपराधी को नष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं, तो अपराधी भी शातिर है और वह अपनी पहचान छिपाने की फिराक में है। सो कई कैंसर कोशिकाएँ इसी तरह से शरीर के इन रक्षक लिम्फोसाइटों को चकमा दिया करती हैं।

कैंसर-कोशिकाओं की सतह पर अन्य सामान्य कोशिकाओं की ही तरह अपने कुछ एंटीजन नामक प्रोटीन उपस्थित होते हैं, जिन्हें वे टी लिम्फोसाइटों (लिम्फोसाइटो का एक प्रकार) को प्रस्तुत करती हैं। इन प्रोटीनों को कैंसर कोशिकाएँ एमएचसी 1 नामक अणु में बाँधती हैं और टी सेल रिसेप्टर से जोड़ देती हैं , जो टी लिम्फोसाइट की सतह पर मौजूद है। इस तरह से एक एमएचसी 1 + एंटीजन + टी सेल रिसेप्टर का जोड़ बन जाता है। शरीर की हर कोशिका को अपनी पहचान टी लिम्फोसाइटों को देनी ही है, यह एक जिस्म का नियम मान लीजिए।

अब इस सम्पर्क के बाद कैंसर को कोशिकाओं पर कुछ अन्य अणु भी उग आते हैं। ये अणु सहप्रेरक (को-स्टिम्युलेटरी) हो सकते हैं और सहशमनक (इन्हिबिटरी) भी। सहप्रेरक अणु सीडी 80 और सीडी 86 हैं। कैंसर-कोशिका पर मौजूद इस अणु से जब लिम्फोसाइट जुड़ेगी , तो वह आक्रमण के लिए उत्तेजित होकर तैयार हो जाएगी। सहशमनक अणु सीटीएलए 4 और पीडी 1 हैं। इन अणुओं से लेकिन जब लिम्फोसाइट जुड़ती हैं , तो एक अलग घटना होती है। अब ये लिम्फोसाइट जो पहले कैंसर-कोशिकाओं को सम्भवत: मारने की तैयारी में थीं , निष्क्रिय हो जाती हैं। यानी एमएचसी 1 + एंटीजन टु टी सेल रिसेप्टर के बाद हुए इस दूसरे सम्पर्क ने रक्षक लिम्फोसाइट के इरादे ऐसे बदले कि उसने दुश्मन को मारने से मना कर दिया। अब शरीर क्या करे बेचारा ! कैंसर ने तो शरीर के सैनिकों को चकमा दे दिया !

तो इस तरह से फिर समझिए :

1 . एमएचसी 1 + एंटीजन (कैंसर-कोशिका पर) जुड़ा लिम्फोसाइट के टी सेल रिसेप्टर से (पहला चरण)।

2 . फिर अगर सीडी 80 या सीडी 86 (कैंसर-कोशिका पर) जुड़ा लिम्फोसाइट से तो हुआ लिम्फोसाइट का उत्तेजन और वह हुआ आक्रमण के लिए तैयार और उनसे किया कैंसर-कोशिका को नष्ट। (दूसरी सम्भावना , जो कैंसर-कोशिका को मारने की सफलता देती है।)

3. लेकिन अगर सीडी 80 और 86 की जगह लिम्फोसाइट जुड़ गया कैंसर-कोशिका की सीटीएलए 4 या पीडी 1 से तो वह निष्क्रिय हो गया। (दूसरी सम्भावना जो कैंसर-कोशिका को मारने की असफलता देती है। यानी कैंसर बच निकलता है।)

(जाहिर है कैंसर की कोशिकाएँ स्मार्ट हैं। वे अपनी देह पर ज्यादा-से-ज्यादा सीटीएलए 4 और पीडी 1 उगाएँगी , न कि सीडी 80/86 ! उन्हें पहचान कराकर अपनी , मरना थोड़ी ही है लिम्फोसाइटों के हाथों !)

अब यहाँ एलिसन और होंजो की जोड़ी आती है मैदान में। वे ऐसी कुछ दवाएँ बनाते हैं , जो कैंसर-कोशिकाओं पर उग आये सीटीएलए 4 और पीडी 1 का लिम्फोसाइटों से सम्पर्क ही न होने दें। उनसे पहले ही जुड़ जाएँ। नतीजन लिम्फोसाइट गुमराह नहीं होंगी और कैंसर-कोशिकाओं को सामान्य रूप से मार सकेंगी। इसी काम के द्वारा विज्ञान कई कैंसरों से लड़ने में कामयाब होता रहा है और इसी तकनीकी को इम्यूनोथेरेपी कहा गया है।

ऐसा नहीं है कि इम्यूनोथेरेपी नयी है। यह कई सालों से प्रचलन में है। इसके अन्तर्गत ढेर सारी दवाएँ उपलब्ध हैं। नोबेल पुरस्कार वैसे भी जिस काम पर मिलता है, उसे मनुष्य काफी समय से इस्तेमाल कर रहे होते हैं। केवल सैद्धान्तिक कामों पर नोबेल नहीं दिये जाते ; उनका व्यापक रूप में मानव-हितकारी होना बहुत जरूरी है।

पुनश्च:अगर आप इस लेख को पढ़कर नहीं समझ पाये , तो कोई आश्चर्य नहीं। अच्छे-अच्छे डॉक्टरों के ये बातें नहीं पता होती हैं। यहाँ तक कि हम-जैसे छात्र इन बातों को पहली बार जब पढ़ते थे, तो दिमाग टन्नाने लगता था। सो अगर धैर्य हो , तो फिर से पढ़िए। नहीं हो, तो न सही।)

विश्लेषण : किसान, राजनीति और दुर्गति

सत्येन्द्र पीएस

उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में गोरखपुर औद्योगिक विकास प्राधिकरण (गीडा) के लिए उस समय जमीन अधिग्रहण की योजना बनी, जब राज्य में कांग्रेस सरकार थी और गोरखपुर के ही निवासी वीर बहादुर सिंह राज्य के मुख्यमंत्री थे। उन दिनों किसानों की जमीन बहुत कम दाम में ली जाती थी। 1988 के आसपास की बात है। अधिग्रहण के लिए मुआवजे की बात आई तो आंदोलन शुरू हुए। गोरखपुर के ही एक नेता दिवाकर सिंह ने किसानों का नेतृत्व किया। दर्जनों बार लाठियां चलीं। कल्याण सिंह के कार्यकाल में गोली चली जिसमें किसान मारे गए। दिवाकर सिंह पर दर्जनों मुकदमे चले। उनकी आमदनी का कोई स्रोत नहीं था और उन्होंने अपना पूरा श्रम किसान आंदोलन में झोंक रखा था।

किसानों के प्यार पर वह जिंदा थे। एक सुंदर सी बीवी। प्यारे बच्चे। उनके खर्च चलाने का कोई साधन नहीं। किराए के मकान में रहते। किसान अनाज सब्जियां, दूध पहुंचा जाते थे। किसी तरह निजी जिंदगी चल रही थी। आखिर में वह किसानों का मुआवजा बढवाने में कामयाब हो गए। पहले से बेहतर मुआवजा किसानों को मिल गया। दिवाकर ने उसके बाद राजनीति में हाथ पांव मारने की कोशिश की। सहजनवा विधानसभा से चुनाव लड़े और जमानत जब्त हो गई। दिवाकर गुमनामी के अंधेरे में चले गए।

अचानक सूचना मिली कि किसी बीमारी से उनकी अकाल मौत हो गई। उनकी पत्नी, बेटी, बेटा किस हाल में हैं और किस तरह संघर्ष कर रहे हैं, यह पता नही। दिल्ली यूपी बॉर्डर पर किसानों की बर्बर पिटाई के बाद 1990 के आसपास की घटनाएं आंखों के सामने घूम गईं। खासकर जब यह पढा कि 2014 में किसान नेता राकेश टिकैत अमरोहा लोकसभा क्षेत्र से चुनाव लड़े थे और उनकी जमानत भी जब्त हो गई थी।

किसान नेता आखिर करें तो क्या करें?

गोरखपुर में गीडा में जिन किसानों की जमीन निकली थी उसमें पिछड़े वर्ग में ज्यादा संख्या सैंथवारों और यादवों की थी। उस समय भी और आज भी, ये दोनों जातियां समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी और भारतीय जनता पार्टी में विभाजित हैं। किसान पीटे जाएं और जैसे ही उन्हें कोई राजनीतिक नेता समर्थन देने पहुंचता है तो हंगामा बरपता है कि राजनीति हो गई। फलां फलां नेता राजनीतिक रोटियां सेंकने पहुंच गए। ऐसे में किसानों का नेतृत्व कौन करे?

क्या वह व्यक्ति, जो किसानों के लिए अपनी जान देकर फुर्सत पाने की इच्छा रखता है वह? और अगर किसानों की दुर्दशा, खराब कानून व्यवस्था, फर्जी मुठभेड़, गरीबी,बेरोजगारी पर राजनीति न हो तो किस मसले पर हो? क्या गे, क्वीर, विवाहेत्तर सम्बन्धों पर राजनीति हो? क्या मन्दिर मस्जिद को लेकर राजनीति हो? क्या इस पर राजनीति हो कि कौन बढ़ा टीका लगाकर मन्दिर में माथा पटकने जाता है? या इस पर कि कौन व्यक्ति मजार पर कितनी लम्बी चादर चढ़ाता है?

आइए, कुछ आंकड़े देखते हैं। अभी 4 दिन पहले सरकार ने जारी किया है। 10वीं कृषि जनगणना के मुताबिक देश में कृषि धारिता 2010-11 के 1.15 हेक्टेयर से घटकर 1.08 हेक्टेयर रह गई है। इसके परिणामस्वरूप 2015-16 में खेती योग्य कुल भूमिधारिता में देश के लघु और सीमांत किसानों की कुल संख्या (जिनके पास 0.00 से 2 हेक्टेयर जमीन है) बढ़कर 86.21 प्रतिशत हो गई है। इनकी संख्या करीब 12.6 करोड़ हो गई है, जो 2010-11 में 84.97 प्रतिशत थी।

उप मझोले और मझोले आकार की जोत रखने वाले किसानों (2 हेक्टेयर से 10 हेक्टेयर) की संख्या इस दौरान 14.29 प्रतिशत से घटकर 13.22 प्रतिशत रह गई है, जबकि बड़ी जोत वाले किसानों (10 हेक्टेयर और इससे ज्यादा) की संख्या 2010-11 के 0.71 प्रतिशत से घटकर 2015-16 में 0.57 प्रतिशत रह गई है।

स्वाभाविक है कि जनसँख्या बढ़ने के साथ खेत बंट रहे हैं। लेकिन क्या जनसंख्या बढ़ी समस्या है? 1931 में 36 करोड़ जनसँख्या थी। उस समय बांग्ला देश और पाकिस्तान भी भारत मे थे। 1943 में बंगाल में अकाल पड़ा। 30 लाख लोग मर गए। इस समय देश की आबादी 125 करोड़ से ऊपर है। हमारे देश मे सरप्लस उत्पादन हो रहा है। गोदाम में अनाज सड़ जाता है। सरकार उसका प्रबंधन नहीं कर पाती है।

स्वाभाविक है कि इस देश मे किसानों ने सबसे ज्यादा काम किया है। देश में नोबेल पुरस्कार नहीं आ रहे। वैश्विक स्तर का एक भी विश्वविद्यालय नहीं बन पाया। एक भी फाइटर प्लेन, इंटरनेट, मोबाइल, एंड्रॉयड, कम्प्यूटर किसी चीज का शोध नहीं हो पाया। विश्वविद्यालयों में एक लाख रुपये से ऊपर सेलरी लेने वाले प्रोफेसर एक भी काबिल विद्यार्थी न निकालकर गुंडे पैदा करते हैं। कुंठित जातिवादी धार्मिक दंगाई पैदा करते हैं। लेकिन इस देश का किसान ही है जो इतना अनाज, फल,सब्जियां पैदा कर देता है कि सवा अरब आबादी का पेट भी भरता है और सड़ाने के लिए सरकार के पास पर्याप्त माल होता है।

भोजन मनुष्य की प्राथमिक जरूरत है, जिसकी समस्या देश के किसानों ने हल कर दी है। पेटों की संख्या बहुत बढ़ी,लेकिन किसानों ने उन पेटों को भरने के लिए अनाज पर्याप्त मात्रा में दे दिया है। इसके बावजूद किसानों की कोई सुनवाई क्यों नहीं है? उसका जीवन स्तर महानगर में एक सेठ की क्लर्की करने वाले नौकर से भी खराब क्यों है?

आइए लौटते हैं दिवाकर सिंह की कहानी पर। उन्होंने गीडा की जिस जमीन के मुआवजे के लिए आंदोलन किया, वह पूरे सहजनवा विधानभा क्षेत्र का महज दसवां हिस्सा है। आंदोलनरत किसान शहरी सटे इलाकों के थे तो उनकी सम्पन्नता भी थी और जमीन का मूल्य भी ज्यादा था। शेष इलाके के किसानों का कहना था कि इतज्ज्ना मुआवजा मिल रहा है, अब क्या चाहिए। खाली नेतागीरी हो रही है और विपक्षी दल वाले सरकार के खिलाफ साजिश कर रहे हैं! इसके अलावा गांव के ज्यादा खेती वाले ज्यादातर ब्राह्मण ठाकुर पहले से निकल चुके हैं देश विदेश में नौकरी करने। वो जमीन बेचना ही चाहते थे और सरकार ने हर हाल में स्थानीय लोगों की तुलना में ज्यादा मुआवजा दे दिया। वो खुश हो गए।

बचे लघु और सीमांत किसान, जिनकी आबादी 85 प्रतिशत है और खेत 2 हेक्टेयर से कम। सारी गाज उन्ही पर गिरनी है क्योंकि उतनी जमीन का जो मुआवजा मिलना है उससे वो कुछ कर नहीं पाते, खाने का साधन अलग छिन जाता है। इसके अलावा मजदूर तबका है, जिन्हें दलित कहा जा सकता है। उनका परोक्ष रोजगार जाता है, लेकिन उन्हें किसान आंदोलन से कोई मतलब नही होता। कुछ हद तक तो वो खुश भी होते हैं कि हमारे बुर्जुआ की जमीन छिन रही है, यह अच्छी बात है। यही वजह है कि दिवाकर सिंह और राकेश टिकैत जैसे लोग चुनाव में बुरी तरह हारते हैं।

किसानों में गुस्सा है। उनकी हालत दयनीय है। लोग खेत छोड़कर भाग जाना चाहते हैं। वह चाहते हैं कि सरकार उनके लिए कुछ करे। सरकार उनके लिए इसलिए नहीं है कि उनके साथ रहने पर सरकार को कोई लाभ नहीं है। किसान बंटे हुए हैं। एक इलाके के किसान पर मार पड़ती है तो पड़ोस के किसान हंसता है। आदिवासी किसान की जमीन कब्जियाई जाती है और सरकार उन्हें नक्सली कहकर धकिया देती है तो देश का शेष किसान खुश होता है कि देश विरोधी लोगों को सरकार ने मार दिया।

राज्यवार और क्षेत्रवार किसान विभिन्न जातियों में बंटे हैं। दिल्ली के आसपास के किसान जाट हैं, कुछ इलाके में गुज्जर हैं। पूर्वी, मध्य यूपी में कुर्मी, अहीर हैं। महाराष्ट्र में मराठा है। आंध्र में कापू हैं। गुजरात मे पटेल हैं। कर्नाटक में वोक्कालिंगा हैं। छत्तीसगढ़ में आदिवासी हैं। सभी क्षेत्रवार और जातिवार बंटे हैं। समस्याएं सबकी साझा हैं, लेकिन ये एक दूसरे की समस्या में साथ आने के बजाय एक दूसरे पर हंसते हैं और सत्ता इन्हें किस्तों में मार देती है। इन किसानों की साझा रणनीति भी नहीं है। कभी कभी इनकी मांगे इतनी हास्यास्पद होती हैं कि लगता है कि यह कोई मांगने की चीज है, यह तो होना ही चाहिए। कभी लगता है बिना जाने समझे असम्भव सी हास्यास्पद मांग रख दी गई है।

किसानों और भूमिहीन होकर मजदूर बनते जा रहे सीमांत किसानों, खेत मजदूरों की समस्या तभी हल हो सकती है जब देश भर के छोटे छोटे किसान संगठन एकजुट हों। एक साथ बैठकर साझा विमर्श करें। देश के लिए रणनीति बनाएं और शासन सत्ता पर कब्जा कर देश को अपने मुताबिक चलाएं। किसानों ने साबित किया है कि उन्होंने स्वतंत्रता के बाद अपने कार्यक्षेत्र में सबसे शानदार प्रदर्शन किया है। यह इस बात का सबूत है कि विधायिका, कार्यपालिका पर किसानों का कब्जा हो जाये तो वह ज्यादा बेहतर और ईमानदार शासन दे पाएंगे।